बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 195

सराहनीय उपलब्धि

नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार के सबसे प्रमुख कार्यक्रमों में से एक स्वच्छ भारत मिशन पांच वर्ष पहले 2 अक्टूबर को महात्मा गांधी के जन्मदिन पर शुरू किया गया था। मोदी ने 2014 के स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले के प्राचीर से दिए गए भाषण में सफाई और स्वच्छता की बात को प्रमुखता से उठाया था। स्वच्छ भारत मिशन राजग सरकार के तमाम अभियानों में प्रतिनिधि स्थान रखता है। सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन से संबंधित मंत्रालय के अधीन आने वाली इस योजना ने लोगों में उत्सुकता पैदा की, उन्हें अपने साथ जोड़ा और क्रियान्वयन को अंजाम दिया। इस मिश्रण ने ही राजग की सबसे उल्लेखनीय सफलताओं में से शामिल बैंक खातों वाले जन धन कार्यक्रम और स्वच्छ भारत मिशन को अंजाम दिया। मिशन के तहत सरकार ने ग्रामीण इलाकों में शौचालय निर्माण की गति तेज की। आंकड़ों के मुताबिक अब लगभग हर भारतीय परिवार में शौचालय है। उपयोग और आंकड़ों की विश्वसनीयता पर उठने वाले सवालों से परे होकर देखें तो यह उपलब्धि मामूली नहीं है।

बहरहाल तीन ऐसी बातें हैं जिनके इर्दगिर्द सवाल उठ सकते हैं। पहली बात, क्या सफाई और कचरा निपटान के काम को उतनी सफलता मिली है जितनी बताई जा रही है? दूसरा, क्या स्वच्छ भारत मिशन का संस्थागत आधार यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त है कि देश में स्वच्छता और सफाई में स्थायी बदलाव आ जाएगा? तीसरी बात, क्या स्वच्छ भारत मिशन शौचालय निर्माण के अत्यंत संकीर्ण लक्ष्य पर केंद्रित है? इन सवालों में से पहला सबसे विवादित है लेकिन उसका जवाब शायद सबसे स्पष्ट है। केंद्रीय पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय के आंकड़ों को स्वतंत्र शोधकर्ताओं ने चुनौती दी है। रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर कंपैसिनेट इकनॉमिक्स के एक अध्ययन के मुताबिक सरकारी दावों के विपरीत उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान के ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों में से 44 फीसदी शौचालयों तक पहुंच की स्थिति में सुधार होने के बावजूद अब भी खुले में शौच करते हैं। ये आंकड़े स्वच्छता को लेकर मंत्रालय के दावे पर सवाल पैदा करते हैं। इस विषमता का सबसे स्पष्ट उत्तर यह है कि स्वच्छ भारत मिशन में बने शौचालयों की उपलब्धता और इस्तेमाल का अंतर अब तक बरकरार है। इस विषय में और अधिक स्वतंत्र आकलन की आवश्यकता है।

बहरहाल, पांचवीं वर्षगांठ के अवसर पर यह ध्यान देना चाहिए कि स्वच्छ भारत मिशन का काम केवल ठोस कचरे का निस्तारण करना नहीं था। इसका संबंध स्वच्छता से होना था, सार्वजनिक स्वच्छता और खासतौर पर समुचित नाली और कचरा निपटान व्यवस्था वाले साफ-सुथरे शहरों से होना था। स्वच्छ भारत मिशन के इस पहलू पर काम होता तो कहीं बेहतर प्रदर्शन देखने को मिल सकता था। शहरी विकास मंत्रालय देश के सबसे स्वच्छ शहर के लिए एक प्रतियोगिता कराता है। इसके नतीजों को लेकर अधिकांश शहरों के निवासी उपहास करते नजर आते हैं। ऐसा तब है जबकि इसमें नागरिकों को जोड़ा जाता है और स्वयंसेवक कई जगहों पर साफ-सफाई करते नजर आते हैं। दिक्कत यह है ऐसी स्वयंसेवा कभी संस्थागत व्यवस्था की जगह नहीं ले सकती है। मिसाल के तौर पर सशक्त और जवाबदेह स्थानीय सरकार जो साफ-शहरों की गारंटी ले सकती है। यहां तक कि शुष्क शौचालयों का स्थायित्व भी सवालों के घेरे में आ सकता है जिनको कुछ वर्ष बाद खाली करना होगा। हमारा देश उन लक्ष्यों को पूरा करने में अच्छा जहां एक लक्ष्य तय किया जाता है। जबकि लोगों के जीवन में स्थायी बेहतरी लाने में वह पीछे है। अपनी तमाम सफलताओं के बावजूद स्वच्छ भारत मिशन हमें यह याद दिलाता है कि यह व्यापक रुझान अब भी बरकरार है।

अजय मोहंती

अमेरिका के साथ भारत के कारोबारी मसलों का हल

भारत और अमेरिका अहम व्यापारिक समझौते पर पहुंच सकते हैं लेकिन यह अनुमान गलत था। द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौता या आर्थिक सहयोग समझौता चर्चा के बिंदुओं में शामिल नहीं था। बता रही हैं **अमिता बत्रा**

ऐसे सप्ताह में जब अमेरिका के साथ भारत की कूटनीतिक सफलता नई ऊंचाइयों पर पहुंची, भारत और अमेरिका के बीच कारोबारी बातचीत अपेक्षाकृत खामोश बनी रही। इसमें चकित होने वाली कोई बात नहीं क्योंकि अमेरिका के करीबी साझेदार भी राष्ट्रपति ट्रंप की शत्रुतापूर्ण व्यापार नीति संबंधी कदमों से बच नहीं सके। बीते एक वर्ष में भारत को उच्च शुल्क दर, सीमित बाजार पहुंच और कारोबार के माहौल के लिए बार-बार आलोचना का सामना करना पड़ा है।

अमेरिकी राष्ट्रपति ने हार्ली डेविडसन मोटर साइकिल पर आयात शुल्क का बार-बार उल्लेख अवश्य किया लेकिन अमेरिका ने इससे कहीं अधिक गहरे नीतिगत कदम उठाए। उसने जनरल सिस्टम ऑफ प्रिफरेंस प्रोग्राम के तहत भारत तथा कुछ अन्य देशों को दी जाने वाली प्राथमिकता समाप्त कर दी। गत वर्ष जून में अमेरिका ने स्टील और एल्युमीनियम के आयात पर क्रमश: 25 फीसदी और 10 फीसदी शुल्क लगा दिया। भारत को अब इसमें रियायत नहीं मिल रही थी जबकि कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों को यह रियायत उपलब्ध थी। हालांकि भारत ने विश्व व्यापार संगठन के समक्ष अपनी शिकायत दर्ज की लेकिन इसकी अपील संस्था की नई नियुक्तियों को लेकर अमेरिकी निष्क्रियता ने इस बहुपक्षीय संस्थान की प्रणाली को कमजोर कर दिया है। ऐसे में पंजीकृत विवादों का समय पर निस्तारण मुश्किल है। ऐसे में भारत ने भी अमेरिका से होने वाले 29 जिंसों के आयात पर शुल्क बढ़ाकर प्रतिक्रिया दी।

इन तमाम नीतिगत निर्णयों का भारत-अमेरिका द्विपक्षीय व्यापार पर भले ही बहुत अधिक असर न पड़े लेकिन इसे तात्कालिक व्यापारिक नुकसान के रूप में नहीं देखा जा सकता बल्कि घरेलू उत्पादकों के समक्ष प्रतिस्पर्धा में भी भारी इजाफा होना तय है। ऐसा इसलिए क्योंकि भारतीय निर्यातकों को एमएफएन टैरिफ का सामना करना पड़ेगा और निर्यात बाजार में उनकी हिस्सेदारी पर भी असर होगा। उच्च शुल्क के कारण कुछ जिंस का कारोबार भी प्रभावित होगा।

हाल के वर्षों में भारत-अमेरिका द्विपक्षीय कारोबार में सकारात्मक वृद्धि देखने को मिली है। वर्ष 2015-16 की गिरावट के बाद 2016-17 में कुल व्यापार बढ़ा। बाद के दो वर्षों में इसमें और इजाफा हुआ। वर्ष 2017-18 में अमेरिका के साथ भारत का कारोबार 15 फीसदी और 2018-19 में 18 फीसदी बढ़ा। कई वर्षों तक चीन से पीछे रहने के बाद आखिरकार 2018-19 में अमेरिका भारत का सबसे बड़ा कारोबारी साझेदार बन गया। दोनों देशों का कुल कारोबार 8,700 करोड़ अमेरिकी डॉलर रहा। आयात में भारी वृद्धि हुई और यह 2017-18 के 19.29 फीसदी से बढ़कर 2018-19 में 33.59 फीसदी हो गया। बहरहाल, निर्यात वृद्धि 2017-18 के 13.42 फीसदी से घटकर 2018-19 में 9.46 फीसदी रह गई। 2018-19 में जहां तमाम विपरीत नीतिगत बदलाव हुए, वहीं भारत के कुल कारोबार में अमेरिका की हिस्सेदारी थोड़ी और बढ़कर 10.42 फीसदी हो गई।

वरीयता कम करने का असर रसायन, प्लास्टिक, मशीनरी और मैकेनिकल उपकरण, इलेक्ट्रिकल उपकरण, फोटोग्राफिक, ऑप्टिकल, मेडिकल, सर्जिकल उपकरण आदि क्षेत्रों में देखने को मिल सकता है। ये वे क्षेत्र हैं जिनमें सबसे अधिक जिंस जीएसपी रियायत के अधीन आती थीं। ये तमाम क्षेत्र देश के शीर्ष 20 निर्यात क्षेत्रों में आते है, अमेरिका भारत के लिए सबसे बड़ा या दूसरा सबसे बड़ा निर्यात बाजार है। बीते दो वर्षों में भारत के कुल निर्यात में अमेरिकी बाजार की हिस्सेदारी की बात करें तो बिजली मशीनरी के 7 फीसदी से यह मशीन एवं अन्य उपकरणों में यह 20 फीसदी तक रही। परंतु रसायन के अलावा इन क्षेत्रों में अमेरिका के कुल आयात में भारत की हिस्सेदारी बेहद कम यानी एक फीसदी या उससे कम है। रसायन में यह यह 4.6 फीसदी है। जीएसपी समाप्त होने के बाद चूंकि भारतीय निर्यात को एमएफएन शुल्क का सामना करना पड़ता है तो उसे चीन, जर्मनी, जापान, दक्षिण कोरिया तथा अन्य विकसित देशों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। ये देश अपने-अपने क्षेत्र में अमेरिका को निर्यात करने वाले प्रमुख देश हैं। इन विकसित देशों से कड़ी प्रतिस्पर्धा के बीच भारत शायद अमेरिकी बाजार में अपनी मामूली हिस्सेदारी बचाए न रख सके।

स्टील निर्यात में 2018-19 में 34 फीसदी की गिरावट देखने को मिली। इस वर्ष मई में इसका निर्यात तीन वर्ष के निचले स्तर पर आ गया। ऐसा अमेरिका द्वारा टैरिफ बढ़ाने तथा अन्य आयात करने वाले देशों द्वारा सुरक्षा उपाय अपनाने से हुआ। हमारे कुल निर्यात में एल्युमीनियम निर्यात की हिस्सेदारी 2018-19 में 1.4 फीसदी थी जो अब घटकर 1.1 फीसदी रह गई।

भारत ने भी प्रतिक्रियास्वरूप शुल्क बढ़ाया। अमेरिकी निर्यात में बादाम 54 फीसदी, सेब 15 फीसदी, फॉस्फोरिक ऐसिड 33.7 फीसदी और लोहे तथा गैर अलॉय स्टील उत्पाद 29.7 फीसदी की हिस्सेदारी रखते हैं। बहरहाल अमेरिकी निर्यात में जबरदस्त हिस्सेदारी के साथ ही ये उत्पाद भारत के कुल आयात के लिए भी मायने रखते हैं। वर्ष 2018-19 में देश के बादाम आयात में से 80 फीसदी, अखरोट और ताजे सेब में से 47 फीसदी तथा स्टील आयात में से 41 फीसदी, अमेरिका से आए थे। कहा जा सकता है कि उच्च शुल्क दर भारतीय आयातकों को भी नुकसान पहुंचा रही है। प्रतिक्रियास्वरूप उठाए गए कदमों से कुछ खास हासिल नहीं हुआ और शायद इससे अमेरिका पर इतना दबाव भी नहीं बना कि वह भारत का दर्जा बरकरार कर दे।

ई-कॉमर्स कृषि क्षेत्र में बढ़ी हुई बाजार पहुंच, आईसीटी उत्पादों पर घटा हुआ शुल्क तथा डेरी उत्पादों में आधुनिकीकरण आदि से संबंधित अमेरिकी मांग के कारण भी काफी दिक्कत बनी हुई है। यह आसानी से स्वीकार्य नहीं है क्योंकि भारत बहुपक्षीय स्तर पर भी और द्विपक्षीय मुक्त व्यापार वार्ताओं में भी इन मसलों से जूझ रहा है। चुनिंदा चिकित्सा उपकरणों की मूल्य सीमा समाप्त करना भी अमेरिका की मांगों में शामिल है। ऐसा करना भी कठिन है क्योंकि सस्ती स्वास्थ्य सेवा भारत की प्राथमिकता में है।

हालिया यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच व्यापार समझौते की उम्मीद या उसका जिक्र सिरे से गलत था क्योंकि किसी द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौते या आर्थिक साझेदारी पर चर्चा ही नहीं होनी थी। हां, इस दौरान एकपक्षीय तदर्थ व्यापार नीति उपायों को वापस लिए जाने की उम्मीद जरूर की जा सकती थी। परंतु चूंकि व्यापार नीति को राष्ट्रपति ट्रंप एक अहम राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं ऐसे में भारत के लिए इसे हासिल करना भी कतई आसान नहीं था। बादाम, अखरोट और सेब के आयात शुल्क के बदले कुछ प्रमुख निर्यात उत्पादों को वापस वरीयता देने का अनुरोध करना भारत के लिए अधिक व्यवहार्य होगा। अगले कुछ दिन में जब बातचीत दोबारा शुरू होगी तो इस दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए।

(लेखिका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय अध्ययन केंद्र में प्रोफेसर हैं)

दिल्ली स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स जैसी संस्था की छवि का पतन

सम सामयिक

टीसीए श्रीनिवास-राघवन

मनमोहन सिंह कुछ दिन पहले 87 साल के हो गए। इस मौके पर मेरे दिमाग में 49 साल पहले की यादें ताजा हो गईं जब मैं पहली बार उनसे दिल्ली स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स (डीएसई) में मिला था। उन्होंने हमारी कक्षा को चार महीने तक अंतरराष्ट्रीय व्यापार पढ़ाया था। 1960 के दशक के अंत में डीएसई में पढ़ाने वाले कई लोग ऊंचे पद तक पहुंचे। इनमें डॉ. सिंह और अमर्त्य सेन का नाम सबसे ऊपर है। लेकिन एक संस्थान के रूप में डीएसई की छवि का पतन हुआ।

ज्यां द्रेज ने 1995 में प्रकाशित अपनी किताब में डीस्कूल पर एक लेख लिखा था। उनका कहना था कि यह संस्थान अपनी वास्तविक संभावनाओं को हासिल करने में नाकाम रहा। यह अर्थशास्त्र में विशेषज्ञता रखने वाले दुनिया के कई जाने माने अंतरराष्ट्रीय संस्थानों को टक्कर दे सकता था लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि आखिर ऐसा क्यों हुआ। 1970 के दशक की शुरुआत से अब तक संस्थान में शिक्षकों की कमी बढ़ती गई क्योंकि उन पदों पर भर्तियां नहीं की गईं। लेकिन जो कुछ शिक्षक इस संस्थान में हैं उनकी योग्यता संदेह से परे है। कॉलेज छात्रों की संख्या अब बहुत बढ़ गई है। लेकिन संस्थान और शिक्षा के स्तर में कोई कमी नहीं आई है। साथ ही परीक्षा का स्तर भी यथावत बना हुआ है।

तरीके को लेकर भ्रम

तो फिर संस्थान के साथ क्या गलत हुआ? डीस्कूल शीर्ष संस्थानों की सूची से कैसे बाहर हो गया? जब आप इसकी तह में जाते हैं तो आपको इसके पतन के असली कारण नजर आने लगते हैं। इसके लिए विश्वविद्यालय भी बराबर का जिम्मेदार है। करीब 40 वर्षों से इसे विश्वविद्यालय की तरफ से कोई सहयोग नहीं मिला है। यह हमारी व्यवस्था में गंभीर समस्या की तरफ इशारा करता है। विश्वविद्यालय शोध को ज्यादा अहमियत नहीं देते हैं। उनका जोर शिक्षा के प्रसार पर रहता है और रहना भी चाहिए।

साफ है कि डीस्कूल ने अपनी सबसे बड़ी गलती 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध में की थी जब उसने अपनी स्वायत्तता छोड़ दी और दिल्ली विश्वविद्यालय का एक विभाग बनकर रह गया। इसके उलट भारतीय सांख्यिकी संस्थान ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और उत्कृष्ट संस्थान की अपनी छवि बनाए रखी है। ज्यां ने अपने लेख में लिखा कि उसने अपनी विशिष्ट खूबी को बनाए रखा और उसका जोर पूरी तरह शोध पर रहा है। लेकिन डीस्कूल में इसका उलटा हुआ क्योंकि यह दिल्ली विश्वविद्यालय का हिस्सा है।

लेकिन डीस्कूल में केवल शिक्षा और शोध के कारण ही गिरावट नहीं आई है। मेरे पास इसकी एक और वजह है। यह वजह है कि संस्थान अर्थशास्त्र की दो परस्पर विरोधी बौद्धिक परंपराओं में से किसी एक को चुनने में नाकाम रहा। इनमें से एक यूरोपीय परंपरा है और दूसरी अमेरिकी। पहली परंपरा विश्लेषण पर जोर देती है जबकि दूसरी परंपरा अनुभव पर।

जब वीकेआरवी राव ने इसकी स्थापना की थी तो भारत अर्थशास्त्र की ऑक्सब्रिज-एलएसई विचारधारा का गढ़ हुआ करता था। 1970 के दशक के अंत तक यही स्थिति रही। अमेरिका और आधुनिक गणित के इस्तेमाल की तरफ इसका झुकाव अचानक हुआ। पॉल सैम्यूलसन ने 1940 के दशक के अंत में एक विषय के रूप में आधुनिक गणित की शुरुआत की थी।

मूल रूप से 1980 के दशक से पहले अर्थशास्त्र की किसी अवधारणा को साबित करने के लिए गणितीय तकनीक के इस्तेमाल की जरूरत पड़ती थी। हालांकि इस तरीके से कुछ लोग सहमत नहीं थे लेकिन इसकी एक खूबी थी। इसने आर्थिक मुद्दों के विश्लेषण में बौद्धिक स्पष्टता के लिए मजबूर किया। इस तरह की स्पष्टता का स्तर गैर-गणितीय तकनीकों से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता था और न ही किया जा सकता है। इसमें लफ्फाजी के के लिए कोई जगह नहीं थी और न है।

अमेरिकियों का प्रवेश

इसके उलट अमेरिकी तरीके में पूरा पैसा वसूल किया जाता है। इसका मतलब है कि इसमें गणितीय तकनीकों के बजाय आंकड़ों को प्रमाण माना जाता है। यह ठीक है क्योंकि सिद्धांत देने वालों की ज्यादतियों के कारण इस सुधार की सख्त जरूरत थी। लेकिन इसने भारत में एक अजीबोगरीब स्थिति पैदा कर दी।

उचित आंकड़ों के अभाव में डीस्कूल के अर्थशास्त्रियों के पास शोध के लिहाज से कोई चारा नहीं रह गया था। शोधपत्रों की संख्या बहुत कम हो गई थी। जल्दी ही संस्थान की व्यक्तिगत और संस्थागत छवि प्रभावित होने लगी। कई पेशेवर अर्थशास्त्रियों ने एक साथ देश छोड़ दिया। दूसरे लोग ऐसे पेशों में शामिल हो गए जहां गहरे शोध की जरूरत नहीं थी। तीसरी तरह के लोगों को थिंक टैंक के साथ मिलकर ही काम चलाना पड़ा। मेरी राय (संभवत: गलत) में इससे डीस्कूल में दुविधा पैदा हो गई है। उन्हें पता नहीं है कि पढ़ाई में किस चीज पर जोर देना है। पुराने यूरोपीय/ऑक्सब्रिज तरीके पर या फिर नए अमेरिकी तरीके पर।

इससे यह सवाल पैदा होता है कि क्या डीस्कूल को अपनी स्वायत्तता मांगनी चाहिए और शोध पर जोर देना चाहिए, आर्थिक विभाग के रूप में अपनी पहचान छोड़ देनी चाहिए जिसे विश्वविद्यालय अपने पास रख सकता है? जाहिर है कि यह सवाल केवल डीस्कूल का ही नहीं है बल्कि सभी विश्वविद्यालयों को इसका सामना करना चाहिए। क्या उन्हें पढ़ाई और शोध को अलग कर देना चाहिए? मुझे लगता है कि उन्हें ऐसा करना चाहिए। यह केवल अर्थशास्त्र में ही नहीं होना चाहिए बल्कि सभी विषयों में होना चाहिए। अन्यथा हमें आशंका है कि सभी उत्कृष्ट केंद्रों का हश्र डीस्कूल की तरह हो सकता है। इससे भी बदतर स्थिति यह है कि उन्हें राजनीतिक रूप से नियुक्त और राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित कुलपतियों को झेलना पड़ेगा जो मनमाने ढंग से काम करते हैं। इनमें से कई हमें हिंदी के इस मुहावरे की याद दिलाते हैं, बंदरों के हाथ में हीरों का हार।

कानाफूसी

महज खानापूरी

उत्तर प्रदेश विधानसभा में विपक्ष ने योगी आदित्यनाथ की भाजपा सरकार द्वारा महात्मा गांधी की 150वीं वर्षगांठ मनाने के लिए आयोजित दो दिवसीय विधानसभा सत्र का बहिष्कार करने का निर्णय लिया है। तीन प्रमुख विपक्षी दलों बहुजन समाज पार्टी, समाजवादी पार्टी और कांग्रेस ने न केवल संयुक्त राष्ट्र महासभा के सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों पर होने वाली चर्चा से दूर रहने का निर्णय लिया है बल्कि कांग्रेस ने तो यह भी कहा है कि जिस समय यह सत्र चल रहा होगा वह प्रत्येक जिले में शाहजहांपुर बलात्कार मामले को लेकर विरोध प्रदर्शन करेगी। विपक्षी दलों के सदस्यों की अनुपस्थिति में इस बहुचर्चित सत्र के केवल सत्ताधारी दल की मौजूदगी में होने वाली खानापूरी में बदल जाने का खतरा भी उत्पन्न हो गया है। क्योंकि वहां न तो कोई बहस होगी न कोई अन्य बातचीत।

ऋण मेला या ग्राहक मेला?

केंद्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने पिछले दिनों यह घोषणा की थी कि देश के 400 जिलों में ऋण मेला आयोजित किया जाएगा। मंत्रालय के अधिकारियों ने इन ऋण मेला को ग्राहकों तक पहुंच बनाने के एक सामान्य कार्यक्रम के तर्ज पर पेश करने का निर्णय लिया गया है। गौरतलब है कि इस कदम की घोषणा के लिए आयोजित संवाददाता सम्मेलन में सीतारमण ने ऋण मेला शब्द से दूरी बनाए रखी। वित्त मंत्रालय ने इस संबंध में बैंकों से जो आंतरिक संवाद किया है, उसमें 3 अक्टूबर से शुरू होने वाले इस अभियान को ग्राहक मेला शिविर का नाम दिया गया है।

आपका पक्ष

सल्फर उत्सर्जन पर लगे रोक

हाल में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत दुनिया में घातक सल्फर डाई ऑक्साइड का सबसे बड़ा उत्सर्जक देश है। भारत वैश्विक स्तर पर मानव जनित सल्फर डाई ऑक्साइड उत्सर्जन में 15 प्रतिशत का योगदान देता है। सल्फर डाई ऑक्साइड एक विषैली गैस है जो सामान्यत: कोयले के दहन से निकलती है। इसकी सूक्ष्म मात्रा मानव में अस्थमा जैसे रोगों का कारण बनती है। सल्फर डाई ऑक्साइड गैस वनस्पतियों के वृद्धि व विकास पर भी बुरा प्रभाव डालती है। भारत में सल्फर डाई ऑक्साइड गैस के उत्सर्जन में हुई बेतहाशा वृद्धि का कारण बड़े स्तर पर कोयला आधारित बिजली संयंत्रों की स्थापना रही है। औद्योगीकरण के दौर में बिजली की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए ताप बिजली संयंत्र स्थापित किए गए है जहां प्रति दिन लाखों टन कोयला जलाया जा रहा है।

झारखंड के झरिया कोयला खदान क्षेत्र में कोयला ले जाते स्थानीय लोग -पीटीआई

कोयला खदान वाले क्षेत्रों के आसपास कोयले का अधिक इस्तेमाल किया जाता है। रिपोर्ट के अनुसार भारत में 10 स्थानों पर सल्फर डाई ऑक्साइड उत्सर्जन की दर भयावह स्तर तक पहुंच गई है। इन शहरों में लोग स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्याओं का सामना कर रहे हैं। सल्फर डाई ऑक्साइड के कुप्रभावों को खतरनाक स्तर तक पहुंचने से पहले इसके उत्सर्जन में कमी लाने की आवश्यकता है। गौरतलब है कि मंत्रालय ने सल्फर उत्सर्जन कम करने के लिए कोयला आधारित सभी बिजली संयंत्रों के लिए फ्लू गैस डीसल्फराइजेशन तकनीक के प्रयोग को अनिवार्य कर रखा है। इसे स्थापित करने के लिए दिल्ली-एनसीआर में 2019 तथा पूरे देश में 2022 तक की समय सीमा तय की गई है। इसके अलावा कोयले के अवैध खनन, व्यापार और ईंट भट्ठे पर सख्ती से रोक लगानी होगी। लोगों को रसोई गैस के प्रति प्रोत्साहित करना होगा। इस तरह हम सल्फर डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी लाकर वातावरण को दूषित होने से बचा सकते हैं।

ऋषभ देव पांडेय, जांजगीर

प्लास्टिक को प्रतिबंध करने का लें संकल्प

आज प्लास्टिक हमारे जीवन के लिए बहुत बड़ा खतरा बनकर उभर रहा है। दिन की शुरुआत से रात तक प्लास्टिक ने किसी न किसी रूप में हमें जकड़ रखा है। बाजार से कोई सामान लाना हो या टिफिन और वाटर बॉटल में पानी ले जाना, प्लास्टिक हर जगह हर समय साथ है। विश्व में प्लास्टिक का उपयोग इतना बढ़ चुका है कि यह भविष्य में हमारी पीढ़ी को बीमार बनाएगा। अब ऐसे कदम उठाने जरूरी हो गए हैं जिनसे हम प्लास्टिक से पूरी तरह छुटकारा पा सकें। हम सभी को प्लास्टिक के विकल्प पर ध्यान देने की जरूरत है। प्लास्टिक की थैलियों के विकल्प के रूप में जूट, कपड़ा और पेपर बैग को लोकप्रिय बनाना चाहिए। प्लास्टिक के गिलास, बोतल या कैन में पानी पीने के बजाय कांच या स्टील गिलास का प्रयोग करना चाहिए। चाय के लिए मिट्टी के बने बर्तन का इस्तेमाल करना चाहिए। हम सभी को एकल इस्तेमाल वाले प्लास्टिक को पूरी तरह से त्यागने की जरूरत है। इसके लिए जनभागीदारी की आवश्यकता है।

राजू, गोरखपुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।